आख़िरी पैग़म्बर

सैयद मुहम्मद इक़बाल

आख़िरी पैग़म्बर

सैयद मुहम्मद इक़बाल

मधुर सन्देश संगम

E-20, अबुलफज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर, नई दिल्ली-25

मधुर संदेश संगम प्रकाशन न० ३

किताब का नाम :आख़िरी पैगम्बर

लेखक : सैयद मोहम्मद इक़बाल

हिन्दी एडीशन 1991

1999
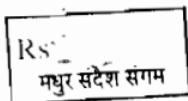
ईश्वर के नाम से जो बड़ा दयावान और अत्यन्त कृपाशील है

शुभारम्भ

बात हज़रत मुहम्मद (स०)[1] की है। हज़रत मुहम्मद जिन्हें दुनिया भर के मुसलमान ईश्वर का आख़िरी पैग़म्बर मानते हैं। दूसरे लोग उन्हें सिर्फ़ मुसलमानों का पैग़म्बर समझते हैं। क़ुरआन से और स्वयं हज़रत मुहम्मद की बातों से यही पता चलता है कि वे सारे संसार के लिये भेजे गये थे। उनका जन्म अरब देश के नगर मक्का में हुआ था, उनकी बातें सर्व-प्रथम अरबों ने सुनीं परन्तु वे बातें केवल अरबों के लिए नहीं थीं। उनकी शिक्षा तो समस्त मानव-जाति के लिये है। उनका जन्म 571 ईस्वी में हुआ था, अब तक लगभग 1400 वर्ष बीत गये पर उनकी शिक्षा सुरक्षित है। पूरी की पूरी मौजूद है। हमारी धरती का कोई भू-भाग भी मुहम्मद (स०) के मानने वालों से ख़ाली नहीं है।

एक दूसरे को जानने की ज़रूरत

मुहम्मद (स०) के मानने वाले रहते तो हर जगह हैं, पर दुर्भाग्यवश वे जिन समाजों में रहते हैं, उनमें उनके और दूसरे धर्म के लोगों के बीच बड़ी वैचारिक खाई है। हम रहते तो साथ हैं, परन्तु एक-दूसरे के धर्म, विचारों और आस्थाओं से अवगत नहीं हैं। और शायद हम इसकी कोई ज़रूरत भी नहीं समझते हैं। लेकिन सच पूछिये तो इसका बड़ा महत्त्व है। हमें एक-दूसरे के विचारों को अवश्य जानना चाहिए। न जानने का एक कारण तो यह है कि हम अपने ही धर्म विचारों और आस्थाओं को नहीं जानते, दूसरा कारण

स० : सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अर्थात उन पर अल्लाह की ओर से कृपा और सलामती हो!

यह भी हो सकता है कि धर्म को एक निजी चीज़ समझ लिया गया है, इसे छिपाना और अपने-आप तक सीमित रखना ही सिखाया जाता रहा है। मगर अब हालात बदल रहे हैं और इसकी ज़रूरत बढ़ रही है। यह ज्ञान बड़ा लाभकारी सिद्ध होगा। इससे हम धर्म को उसके सही परिवेश में देख सकेंगे, आपसी सद्भावना बढ़ेगी और पड़ोसियों के आपस में अच्छे सम्बन्ध स्थापित होंगे।

मुहम्मद (स०) — एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व

मुहम्मद (स०) एक इन्सान थे। एक माता-पिता की संतान थे। वह संसार में रहे, जैसे इन्सान रहता है, फिर 63 वर्ष की आयु में इस संसार से विदा हो गये और अपने पीछे दो चीज़ें छोड़ गये। एक ईश-वाणी, क़ुरआन और दूसरे अपनी शिक्षाऐं, जिन्हें हदीस कहा जाता है।

हम जब धर्मों का इतिहास पढ़ते हैं तो पता चलता है कि धर्म-ग्रन्थ और धर्म-गुरू दोनों को लोगों ने या तो एकदम भुला दिया या उनकी शिक्षाएँ अपने असली रूप में बाक़ी न रहीं। उन के बारे में इतनी कहानियाँ गढ़ ली गईं कि समय गुज़रते-गुज़रते धर्म गुरुओं के असली व्यक्तित्व का पता लगाना कठिन हो गया। इन में कुछ तो इतिहास पूर्व के लोग भी थे।

लेकिन मुहम्मद (स०) के साथ विशेषता यह है कि उनके द्वारा लाई गई किताब, क़ुरआन एक अक्षर के अन्तर के बिना संसार के कोने-कोने में मौजूद है और स्वयं मुहम्मद (स०) का पूरा जीवन और पूरी शिक्षा सुरक्षित है। मुहम्मद (स०) किसी रहस्यमय व्यक्तित्व का नाम नहीं। एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व का नाम है जो मानवता के ऐतिहासिक मोड़ पर दुनिया में आया था।

पुनर्जागरण के बाद के योरोप के बुद्धिजीवियों ने बड़े प्रयास किये मुहम्मद (स०) की ज़ात को रहस्यमय बनाने के। पर वे विफल रहे और फिर उन्हें इस वास्तविकता को स्वीकार भी करना पड़ा। थौमस कारलायल ने कहा, "इस व्यक्ति (मुहम्मद) के चारों ओर झूठ का जो ढेर इकट्ठा किया गया, वह स्वयं हमारे लिये अपमान-जनक है।"

मुहम्मद (स०)– ईश-दूत

हज़रत मुहम्मद (स०) एक पूर्ण व्यक्तित्व के मालिक थे। उनकी जीवनी के अध्ययन से पता चलता है कि आप ने एक सफल नेतृत्व प्रदान किया था। पिता के रूप में, पति के रूप में, राजनेता के रूप में, व्यापारी के रूप में, सेनापति के रूप में, न्यायाधीश के रूप में, ग़रीबों और कमज़ोरों के मसीहा के रूप में– हर रूप में हम उन्हें सफल देखते हैं। परन्तु उनका विशेष और असल रूप ईश-दूत का था। ईश्वर की ओर से आप पर जो विशेष ज़िम्मेदारी थी, वह ईश्वर का संदेश इन्सानों तक पहुंचाना था, लोगों को एक ईश्वर की उपासना के लिये तैयार करना और दूसरी तमाम उपासनाओं से छुटकारा दिलाना था। यह काम भी मुहम्मद (स०) ने अत्यंत सफलता से पूरा किया।

इस्लाम– एक पूर्ण जीवन-पद्धति

इस्लाम का नाम आता है तो हर कोई समझ जाता है कि ईसाई धर्म, बोद्ध धर्म और दूसरे धर्मों की तरह यह भी एक धर्म है। पर सच्चाई इस से ज़रा भिन्न है। साधारणतः धर्म कुछ उपदेशों, कुछ

पूजा अर्चना और व्यक्तिगत ईश-भक्ति को ही समझा जाता है। जबकि इस्लाम एक पूरी जीवन-पद्धति है, जो जीवन के हर मोड़ पर हमारा मार्ग-दर्शन करता है। घरेलू जीवन में, दाम्पत्य जीवन में, पारिवारिक जीवन में, व्यापारिक जीवन में, राजनैतिक जीवन में, आध्यात्मिक जीवन में– जीवन के हर पहलू में। मानव जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं जिसमें इस्लाम हमारा मार्ग-दर्शन न कर रहा हो। हज़रत मुहम्मद (स०) कुछ पूजा पाठ के तरीक़े सिखाने नहीं आये थे, बल्कि वे तो आये थे सम्पूर्ण जीवन के लिए एक सम्पूर्ण जीवन प्रणाली लेकर और जो किसी काल्पनिक दुनिया की न थी बल्कि अत्यन्त सरल और व्यावहारिक थी। इस्लाम की नैतिक-व्यवस्था उन लोगों के लिये नहीं जो गुफाओं, जंगलों और मठों में नैतिकता और आध्यात्मिकता की सीढ़ियां चढ़ रहे होते हैं। इस्लाम की नैतिक व्यवस्था उन मनुष्यों का मार्ग-दर्शन करती है जो जीवन की मुख्य धारा में चल रहे होते हैं। यह व्यवस्था नैतिकता से सुसज्जित करना चाहती है, शिक्षक को, विद्यार्थी को, पति को, पत्नी को, पिता को, पुत्र को, दुकानदार को, पड़ोसी को, मज़दूरों को, मालिकों को, किसानों को, न्यायाधीशों को, अफ़सरों को, पुलिस कर्मियों को, फ़ौजियों को, शासकों को।

पूजा का भी एक क्रांतिकारी विचार हमें इस्लाम में मिलता है। क़ुरआन कहता है कि 'हम ने मनुष्य को अपनी उपासना के लिये पैदा किया है।' स्पष्ट है कि यह उपासना मस्जिद जाने और नमाज़ पढ़ने या एकान्त में बैठ कर ईश्वर को याद करने तक सीमित नहीं हो सकती, फिर तो वह उपासना एक निश्चित समय में ही सम्भव होगी। क़ुरआन और मुहम्मद (स०) की शिक्षाओं से हमें मालूम होता है कि नमाज़ पढ़ना ही इबादत (पूजा) नहीं है, बल्कि परिश्रम करके ईमानदारी से रोज़ी कमाना भी इबादत है, घर के लोगों की ज़रूरतों

को पूरा करना भी इबादत है, पड़ोसी का ख़्याल करना भी इबादत है, शादी करना भी इबादत है, लोगों का हक़ अदा करना भी इबादत है, यहां तक कि रास्ते से कांटा या तकलीफ़देह चीज़ हटा देना भी इबादत है, और इन में से हर काम ईश्वर के यहां पुण्य लिखा जाता है। और यह कि उसे इन कर्मों का अच्छा बदला दुनिया और मरने के बाद आने वाली दुनिया में मिलेगा।

मौलिक आस्थाएँ

इस्लाम की मौलिक आस्थाएँ तीन हैं :–

- ऐकेश्वरवाद–यानी ईश्वर के साथ किसी को शरीक न करना।
- दूतवाद– यानी मार्ग-दर्शन के लिए आये ईश्वर के पैग़म्बरों को मानना और
- इस संसार के बाद एक और पारलौकिक जीवन का यक़ीन।

हज़रत मुहम्मद (स०) की शिक्षा इन्हीं तीन बिन्दुओं पर केन्द्रित थी। क़ुरआन भी इन्हीं बातों को दोहराता है। इस संसार का सृष्टा और स्वामी एक ही है, अनेक नहीं, हमें मर कर फिर उसके सामने पेश होना है, उसने हमारे कामों की जाँच और फ़ैसले का एक दिन निश्चित कर रखा है। मनुष्य को सत्य-मार्ग बताने के लिये ईश्वर की ओर से ईश-दूत और पैग़म्बर आते रहे हैं, जिनकी अन्तिम कड़ी हज़रत मुहम्मद थे। इस्लाम की नज़र में वही मुस्लिम है जो इन बातों को सही समझते हुए स्वीकार कर ले।

मुहम्मद (स०) मक्का में

हज़रत मुहम्मद (स०) का जन्म मक्का में हुआ। मक्का एक छोटा सा शहर था। इसका वास्तविक महत्व काबा के कारण था।

हज़रत इब्राहीम के हाथों बना यह छोटा सा घर केन्द्र बिन्दु था, जिसे सांकेतिक रूप में अल्लाह का घर कहा जाता है। लोग हज करने यहां आते थे, हाँ मुहम्मद से पहले भी लोग हज के लिये आते थे। क़बीले और सरदारी का ज़माना था। एक क़बीला दूसरे क़बीले से छोटी-छोटी सी बातों पर लड़ जाता तो लोग एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे हो जाते और कभी-कभी तो ये लड़ाई कई पीढ़ियों तक जारी रहती। निरक्षरता आम थी, पढ़े-लिखे लोग गिनती के थे। अज्ञानता और अंधविश्वास का अंधकार हर जगह छाया हुआ था।

मुहम्मद (स०) के पिता का निधन मुहम्मद (स०) के जन्म से पहले ही हो गया था। जब वे एक व्यापारिक यात्रा से वापस आ रहे थे। छः वर्ष के थे तो माता भी संसार से विदा हो गईं। इस यतीम (अनाथ) बच्चे के लिये उसके दादा अब्दुल मुत्तलिब ही सब कुछ बन गये, मगर दो वर्ष-बाद जब वह भी परलोक सिधार गये तो आप के चचा अबू तालिब ने आप को अपने संरक्षण में ले लिया। अपने साथ रखा, व्यापारिक यात्राओं में भी साथ ले गये।

मुहम्मद (स०) मक्का के एक पाकबाज़ नवयुवक थे। सारे शहर के आँखों के तारे। कभी कोई ऐसा काम न किया जिससे किसी को तकलीफ़ पहुंचती। उस समय एक सन्धि में बढ़-चढ़ कर भाग लिया जिसमें तय किया गया था कि—

- देश से अशान्ति दूर की जायेगी
- यात्रियों की रक्षा की जायेगी
- कमज़ोरों की सहायता की जायेगी
- किसी अत्याचारी को मक्का में रहने नहीं दिया जायेगा।

कुछ दिनों बकरियां भी चराईं, फिर व्यापार भी किया। अपने सदाचार और सद्व्यवहार से बड़ी सफलता पाई। आपको मक्का वालों ने 'अमीन' और 'सादिक़' की उपाधि दी। 'अमीन' यानी अमानत वाला— जो कभी बेईमानी नहीं करता, 'सादिक़' अर्थात् जो सत्यवादी हो— कभी असत्य का सहारा नहीं लेता। मक्के के जो लोग स्वयं व्यापारिक यात्रा नहीं कर सकते थे वे अपनी पूँजी मुहम्मद (स०) ही को देना चाहते थे।

मक्के की एक आदरणीय महिला ख़दीजा थीं। वे भी लोगों से व्यापार करातीं। मुहम्मद (स०) से व्यापार कराया तो उनकी ईमानदारी और व्यवहार से बहुत प्रभावित हुईं। उन्होंने मुहम्मद (स०) से विवाह का संदेश भेज दिया। ख़दीजा की आयु 40 वर्ष थी जबकि आप 25 वर्ष के नवयुवक थे। आपने यह संदेश स्वीकार कर लिया और एक विधवा से आपकी शादी हो गई। नबी घोषित किये जाने से पूर्व भी आपका हर काम आदर्श और उदाहरणीय था।

लोगों का अज्ञानता-पूर्ण व्यवहार और मूर्ति-पूजा से उनका दिल बहुत दुखी रहता था और वह सोचते रहते थे कि एक ईश्वर की उपासना कैसे की जाये और लोगों को सही राह पर कैसे लगाया जाये। आप एकान्त में बैठ कर इन प्रश्नों पर सोचने लगे। शहर से कुछ हट कर एक गुफा में समय बिताने लगे। यहीं एक दिन एक फ़रिश्ता आया और उसने बताया कि अल्लाह ने उन्हें नबी (ईश-दूत) बनाया है।

इसके बाद वह फ़रिश्ता अल्लाह के आदेश ले कर आता रहा और मुहम्मद (स०) मक्का वालों को वह आदेश सुनाते रहे। उनसे एक अल्लाह की पूजा करने की माँग की और मूर्ति-पूजा को बुद्धि और प्रकृति के विरुद्ध बताया। इस बात से मक्के के लोग एक-दम बिगड़ गये। मक्के का सबसे लोकप्रिय इन्सान इस एक आह्वान से सब का

शत्रु बन गया। कुछ लोगों ने तो मुहम्मद (स०) की बात तुरन्त ही मान ली, मगर अधिकतर लोग, विशेषकर मक्का के सरदार कुछ भी सुनने को तैयार न थे। एक दिन कुछ लोग आये और कहा कि अगर वे मक्का के सरदार बनना चाहते हैं तो वे उन्हें सरदार मानने को तैयार हैं, अगर धन दौलत चाहते हैं तो उसका प्रबन्ध किया जा सकता है, अगर सुन्दर से सुन्दर महिला से विवाह चाहते हैं तो यह भी कराया जा सकता है। पर हमारे बुतों को बुरा-भला कहना बन्द करें। आपने सारी पेश-कश रद्द कर दी और कहा कि अगर तुम मेरे एक हाथ में सूरज और दूसरे में चांद भी ला कर रख दो मैं इस काम को नहीं छोड़ सकता। मुझे तो ईश्वर ने यही काम सौंपा है।

आपका विरोध बढ़ता गया। आपको और आपके साथियों को कष्ट दिया जाने लगा। उनका जीना मुश्किल हो गया। यहां तक कि लोगों ने मुहम्मद (स०) को जान से मार देने का निर्णय कर लिया। इसी बीच मदीना— जो मक्का से उत्तर में एक शहर है, के लोग आ कर मिले और इस्लाम के लिये हर बलिदान की प्रतिज्ञा की, पहली बार में 12 और दूसरी बार में 72 आदमियों ने। मदीना में इस्लाम फैल रहा था और मदीना वाले चाहने लगे कि मुहम्मद (स०) मक्का की मुसीबतों से निकल कर मदीना आ जायें। एक रात आप अपने साथी हज़रत अबू बक्र के साथ मदीना के लिये चल पड़े। नबी होने के बाद उन्होंने मक्का में 13 साल बिताये।

मुहम्मद (स०) मदीना में

मदीना का पूरा वातावरण ही दूसरा था। यहाँ के लोगों ने खुले दिल से आपका और मक्का से आने वाले आप के साथियों का स्वागत किया। मदीना के मुसलमानों ने मक्का से आने वाले भाइयों

को अपने घरों में जगह दी, अपने माल में से उन्हें हिस्सा दिया, और अपने व्यापार में उन्हें शरीक कर लिया। अब एक बड़ी तादाद ने इस्लाम स्वीकार कर लिया था और ये सब लोग मिल कर इस्लाम के प्रचार और इस्लामी समाज को मज़बूत बनाने में लग गये।

मदीना पहुंच कर आपने एक मस्जिद बनवाई, यह मस्जिद केवल नमाज़ पढ़ने की जगह न थी बल्कि मदीना में स्थापित होने वाले इस्लामी राज्य का कार्यालय था। नबी (स०) यहीं बैठ कर लोगों को धर्म की बातें भी बताते, आदेश भी देते और राज्य के राजनीतिक मामलों का निपटारा भी करते। यहाँ यहूदी भी आबाद थे। आपने उन से समझौता किया ताकि मक्का वालों को इन से मदद लेने का अवसर कम किया जा सके।

इधर मदीना में एक इस्लामी समाज मज़बूत हो रहा था, उधर मक्का के लोग मुहम्मद (स०) की इस सफलता पर आपे से बाहर हुए जा रहे थे। यहां तक की एक अवसर आया जब मक्के के लोग पूरी शक्ति के साथ मदीना की तरफ़ बढ़े, ताकि इस शक्ति को बल-पूर्वक समाप्त कर दिया जाये। एक हज़ार की फ़ौज लेकर मक्का के लोग मदीना की सीमा पर थे। मुसलमानों के पास अभी सैनिक शक्ति न थी, मगर अपनी रक्षा करने के सिवा और कोई रास्ता भी न था। मुट्ठी भर लोगों को लेकर मुहम्मद (स०) भी बद्र नामक स्थान पर निकल आये, इनकी कुल संख्या 313 थी। मक्का के लोग विजय के लिये आये थे, युद्ध छेड़ दिया। मुहम्मद (स०) और उनके साथियों ने जम कर मुक़ाबला किया और तीन गुना बड़ी सेना को पराजित किया। शत्रु के 70 व्यक्ति मारे गये और लगभग उतने ही पकड़े गये। जबकि इस ओर के 14 लोग शहीद हुए। यह युद्ध मुसलमानों ने ईमान, विश्वास, एकता, अनुशासन चरित्र बल से जीता और मक्का

वालों के इरादे सफल न हो सके। कुछ ही दिनों बाद मक्का के लोगों ने अधिक सैनिक बल के साथ मदीना पर हमला किया, शहर से बाहर उहद नामक स्थान पर फिर युद्ध हुआ, इस बार मदीना के लोगों को अधिक हानि उठानी पड़ी, मगर मदीना का इस्लामी राज्य बाक़ी रहा और मक्का वालों को वापस लौटना पड़ा।

लड़ाई में नैतिकता एवं आचार संहिता

यह बात ऊपर आ चुकी है कि लड़ना भिड़ना अरबों की आदत सी बन गई थी। जब शत्रुता पर उतर आते तो बड़ी कठोरता और अमानवीयता का प्रदर्शन करते, बर्बरता की सीमा पार कर जाना उनके लिये ज़रा कठिन न था। युद्ध में स्पष्ट है कि उनके लिये सब कुछ सही था। मुहम्मद (स०) ने उनके अन्दर कठोरता की जगह करुणा पैदा की और उसे युद्ध के मैदान तक ले गये। मानवता का पाठ पढ़ाया और उसका प्रदर्शन भी युद्ध के मैदान में किया। कड़े आदेश दिये कि लाशों का आदर किया जाये, उस के अंग भंग न किये जायें, बच्चों, महिलाओं और बूढ़ों की जान न ली जाये, खजूरों और फल वाले पेड़ों को न काटा जाये, फ़सल बर्बाद न की जाये, विश्वासघात न किया जाये, संधियों का अनादर न किया जाये। युद्ध के माल और युद्ध के क़ैदियों के विषय में भी मानवीय तरीक़े सिखाये। युद्ध में सिखाये गए तरीक़े व्यवहार में ही आये, आपके साथियों, इस्लामी सेना ने उनका पूरा-पूरा पालन किया। उस युग में ऐसी कोई आचार संहिता तो थी ही नहीं। आज हम जो कुछ देखते हैं वह यह कि एक बार युद्ध आरम्भ हो जाये तो फिर कोई किसी आचार-संहिता का पालन करने को तैयार नहीं होता।

बड़ी विजय की ओर

मक्का छोड़े हुए छः वर्ष हो गये थे, मुसलमानों की इच्छा थी वे मक्का जा कर हज करते। मुहम्मद (स०) अपने 1,400 अनुयाइयों के साथ मक्का की ओर चल पड़े और हुदैबिया नामक स्थान पर पड़ाव डाला। मक्का के लोगों के साथ एक समझौता हुआ जिसमें यह भी तय हुआ कि मुसलमान इस साल लौट जायें और अगले साल आयें। समझौते के बाद वे लौट गये।

मुहम्मद (स०) अपना संदेश लोगों तक पहुंचाते रहे। रोम और ईरान के सम्राटों के नाम पत्र लिख कर इस्लाम का संदेश भेजा। मक्का वालों की शत्रुता जारी थी, मुसलमानों के एक मित्र क़बीले के लोगों को मारा जाने लगा तो मुसलमानों ने हुदैबिया की संधि के भंग होने की घोषणा कर दी। अन्ततः मुसलमान दस हज़ार की सेना लेकर मक्का की ओर बढ़े और बिना किसी लड़ाई के मक्का में प्रवेश कर गये। मक्का के विजय के बाद आपने सभों के लिये क्षमा की घोषणा की।

"जाओ, आज तुम पर कोई आरोप नहीं, तुम सब स्वतंत्र हो।"

मक्का के सरदार जो अब तक आपका विरोध कर रहे थे कहने लगे,

"निस्संदेह आप अल्लाह के रसूल हैं, देश पर विजय प्राप्त करने वाले राजा नहीं हैं, और आपका संदेश सत्य संदेश है।"

आप (स०) ने अपने वक्तव्य में कहा,

"हां, सुन लो हे कुरैश के लोगो! अल्लाह ने अब अज्ञानता पर फूलना और वंश पर गर्व करना सब समाप्त कर दिया। सब लोग आदम की नस्ल (वंश) से हैं और आदम मिट्टी से बने थे।"

प्रेम की तलवार

अपने औपनिवेशिक युग में योरोप के राष्ट्रों ने एक घोर अन्याय किया— दुष्प्रचार का। इन राष्ट्रों ने अपने राज्य की स्थापना सैनिक बल पर की थी और अधिकतर उन क्षेत्रों में की थी, जहाँ मुस्लिम शासक या मुस्लिम आबादी थी, और प्रचार यह किया कि इस्लाम तलवार से फैला है। यह एक सफ़ेद झूठ था, जिसे केवल प्रचार के बल पर फैलाया गया था।

'इस्लाम' शब्द का अर्थ ही 'शान्ति' और 'स्वेच्छा से आत्म समर्पण' है। इस्लाम जो शान्ति का द्योतक है, शान्ति फैलाता भी है और शान्ति से फैलता भी है। इस्लाम जिस आत्म-समर्पण की मांग करता है वह तलवार से पैदा ही नहीं हो सकता— हाँ! प्रेम की तलवार से हो सकता है। क़ुरआन बल पूर्वक धर्म परिवर्तन का कड़ा विरोध करता है, बल्कि दूसरे धर्मों का आदर सिखाता है।

इस्लाम के फैलाव का इतिहास यहाँ दोहराना तो सम्भव नहीं है, बस उदाहरण के लिये अपने देश भारत को ले लीजिए। भारत में इस्लाम पहली इस्लामी शताब्दी ही में आ गया था, उन व्यापारियों के साथ जो केरला और गुजरात के तटों पर व्यापारिक सामान ले कर उतरे थे, जबकि उत्तर भारत में इस्लाम सूफी संतों के द्वारा लोगों तक पहुंचा था। यह बात पूरे विश्वास से कही ज़ा सकती है कि इस्लाम महमूद ग़ज़नवी, बाबर, अकबर, औरंगज़ेब और नादिर शाह के द्वारा नहीं फैला, इनकी तलवारों ने शायद एक व्यक्ति को भी इस्लाम के लिये नहीं जीता।

समानता और न्याय का द्योतक

इस्लाम समानता और न्याय का पाठ पढ़ाता है और ऐसा ही एक समाज बनाना चाहता है, जिसमें अन्याय न हो, असमानता न हो और हज़रत मुहम्मद (स०) एक ऐसा समाज स्थापित करने में सफल हुए,जिसमें न छूत-छात थी, न ऊँच-नीच, न भेदभाव और न ही ऐसा कि कोई धनी होता जा रहा हो और कोई रोटी के टुकड़े के लिये तरस रहा हो। इस्लामी क़ानून की नज़र में न कोई बड़ा था न छोटा। छोटे से गांव की रहने वाली एक बुढ़िया भी आत्म-सम्मान के साथ ज़िन्दा रह सकती थी और आसानी से न्याय प्राप्त कर सकती थी।

हज़रत मुहम्मद (स०) ने समाज के कमज़ोर और बेसहारा लोगों को सम्मान और विश्वास प्रदान किया। जिस ने आपके रास्ते में कांटे बिछाये, आप ने उसे क्षमा किया और उसकी सहायता की। गुलामों को आज़ाद कराया, बच्चियों को ज़िन्दा गाड़ने की प्रथा का अन्त किया, विधवा की शादी को स्वीकारणीय बनाया। क़ैदियों और यतीमों (अनाथों) का सहारा बने और जिसकी मदद करने वाला कोई न था उसकी मदद की। आपने ये सारे गुण अपने साथियों में उभारे। यहां तक की कमज़ोरों की सहायता ने प्रतिस्पर्द्धा का रूप ले लिया।

एक सीधा सादा महान व्यक्तित्व

बड़ा आकर्षक व्यक्तित्व था अल्लाह के आख़िरी पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (स०) का। जीवन में सादगी थी, एकरूपता थी। निजी और सामाजिक जीवन में बड़े परिवर्तन आये, परन्तु इस परम

आदर्श व्यक्तित्व ने हर अवसर पर परम आदर्श ही छोड़ा। घर और बाहर के जीवन में कोई अन्तर न था। नबी बनाये जाने से पहले भी बाद भी। ठाट-बाट आपको पसन्द न था। कपड़े बिल्कुल सादा पहनते। सफ़ेद रंग पसन्द करते। कुर्ता पसन्द था साथ में लुंगी पहनते। ख़ुशबू लगाते और बालों में सदा कंघा करते। कोई उलझे बालों के साथ आ जाता तो पूछते कि क्या उसके पास कंघा नहीं है। चलते तो पूरी मज़बूती के साथ क़दम जमा कर चलते। बोलते तो ठहर-ठहर कर, और ज़रूरत भर ही बोलते,वरना ख़ामोश रहते। बोलते समय चेहरे पर मुस्कान होती और भाषा सरल मगर साहित्यिक होती। गुस्सा आप से बहुत दूर था, पर इन्सान थे, कभी क्रोधित भी होते, जिसमें चेहरा लाल हो जाता,मगर न कोई अश्लील शब्द ज़ुबान से निकालते न फिटकारते। रास्ते में चलने वालों को पहले सलाम करते, बच्चों को भी। किसी सभा में जाते तो जहाँ जगह होती वहीं बैठ जाते, आगे जाने या ख़ास जगह बैठने का प्रयास न करते। किसी की बीमारी की ख़बर सुनते तो उसे देखने जाते और उसके स्वास्थ्य की कामना करते। किसी की मृत्यु हो जाती तो उसके घर जाते और घर वालों को संयम और धैर्य की तलक़ीन करते। बच्चों से प्यार करते, बूढ़ों का आदर करते और सेवकों से अच्छा बरताव करते। सेवकों के साथ मिल कर काम करते और उनसे बराबरी का व्यवहार करते। किसी को नीची नज़र से न देखते और न कभी उसके आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचाते। रहन-सहन रख-रखाओ किसी चीज़ में अपने आप को आम लोगों से बड़ा और अलग न बनने देते। जो कुछ कहते उस पर पहले स्वयं अमल करते तभी तो ईश्वर ने उन्हें परम-आदर्श बनाया।

पूरी मानवता के लिये!!